1987 का अकाल: जगपुरा का दर्द

लेखक : जय सिंह

jagpura@yahoo.com

अध्याय 1: प्रस्तावना और परिचय

1987 का साल इतिहास के पन्नों पर एक ऐसी स्याही से लिखा गया, जो समय के साथ और गहरी होती चली गई। यह वह वर्ष था जब प्रकृति ने अपनी कोमलता को त्याग दिया और अपने क्रोध का ऐसा प्रचंड रूप दिखाया कि ग्रामीण भारत की नींव तक हिल गई। यह कहानी उस दौर की है, जब धरती की साँसें थम सी गई थीं और आसमान ने अपने आँसुओं को रोक लिया था। इस कहानी का केंद्र है जगपुरा, एक छोटा सा गाँव, जो खारी नदी के किनारे बसा हुआ था। यह गाँव उन अनगिनत गाँवों में से एक था, जो भारत की आत्मा को जीवंत रखते थे—सादगी, मेहनत और प्रकृति के साथ एक अनकहा रिश्ता यहाँ की पहचान था।

जगपुरा की मिट्टी में मेहनत की खुशबू समाई थी। यहाँ के खेतों में पसीने की बूँदें बीज बनकर बोई जाती थीं, और फसलें उस मेहनत का फल बनकर लहलहाती थीं। खारी नदी, जो गाँव के जीवन का आधार थी, अपनी लहरों में एक संगीत छिपाए हुए थी—एक ऐसी धुन जो सुबह की पहली किरण से लेकर शाम के आखिरी उजाले तक गाँव वालों के कानों में गूँजती थी। इस नदी के किनारे बसे घर, मिट्टी से बने छोटे-छोटे आशियाने, और हरे-भरे खेत मिलकर एक ऐसी तस्वीर बनाते थे, जो किसी कवि की कल्पना को भी मात दे दे। यहाँ का हर दृश्य, हर ध्वनि, हर खुशबू जीवन का एक हिस्सा थी।

मुहावरा है न, "खारी की गोद में पलता था गाँव, मानो माँ की छाती से दूध पीता हो।" सचमुच, खारी नदी इस गाँव के लिए माँ की तरह थी। उसकी लहरें बच्चों के लिए खेल का मैदान थीं, महिलाओं के लिए पानी का स्रोत थीं, और पुरुषों के लिए खेतों को सींचने वाली जीवन रेखा। गाँव के बुजुर्ग अक्सर कहते थे कि खारी सिर्फ एक नदी नहीं, बल्कि जगपुरा की धड़कन है। जब सूरज की किरणें नदी के पानी पर पड़ती थीं, तो ऐसा लगता था मानो सोना बह रहा हो। बच्चे नदी के किनारे कागज की नावें चलाते, और हवा के झोंके उनके हँसी-खुशी के स्वर को गाँव के हर कोने तक पहुँचा देते। यहाँ का जीवन सादा था, लेकिन उस सादगी में एक गहरा सुख छिपा था।

संस्कृत का एक श्लोक इस भाव को और भी सुंदरता से व्यक्त करता है:

"आपः सर्वस्य संनादति, जीवनं च प्रदीयते।"

(अर्थ: जल सब कुछ संनादति है और जीवन प्रदान करता है।)
खारी नदी इस श्लोक का जीवंत प्रमाण थी। उसके पानी में न सिर्फ गाँव की प्यास बुझती थी, बल्कि उसकी धारा में जीवन का संगीत भी बस्ता था। खेतों में लहलहाती फसलें, पेड़ों पर चहकते परिंदे, और नदी के किनारे मछली पकड़ते लोग—यह सब खारी की देन था। गाँव वाले मानते थे कि जब तक खारी बहती रहेगी, जगपुरा का जीवन भी चलता रहेगा। यह एक अटूट विश्वास था, जो पीढ़ियों से चला आ रहा था।
लेकिन 1987 ने उस विश्वास को तोड़ दिया। उस साल प्रकृति ने अपना दूसरा रूप दिखाया—एक ऐसा रूप जो निष्ठुर था, क्रूर था। आसमान, जो हमेशा बादलों के साथ बारिश की सौगात लेकर आता था, उस साल मुँह फेर लिया। बादल आए, लेकिन उनकी गोद सूनी थी। बारिश की बूँदें, जो खेतों को हरा करने वाली थीं, हवा में ही गुम हो गईं। दिन बीते, हफ्ते बीते, महीने बीते, लेकिन आसमान ने अपनी आँखें नहीं खोलीं। खारी नदी, जो कभी उफान पर रहती थी, धीरे-धीरे सिकुड़ने लगी। उसकी लहरें कमजोर पड़ गईं, और उसका संगीत मद्धम हो गया। खेत सूखने लगे, मिट्टी में दरारें पड़ने लगीं, और गाँव की वह रौनक, जो खारी की गोद में पलती थी, कहीं खो सी गई।
यह सूखा सिर्फ पानी की कमी नहीं था; यह एक ऐसी आपदा थी, जिसने जगपुरा के लोगों की उम्मीदों को भी सूखा दिया। बच्चे अब नदी किनारे नावें नहीं चलाते थे, क्योंकि पानी इतना कम हो गया था कि नावें चलाने का सपना भी सूख गया। महिलाओं को पानी के लिए मीलों दूर तक पैदल जाना पड़ता था, और पुरुष अपने सूखे खेतों को देखकर चुपचाप सिर झुकाए बैठे रहते थे। गाँव में सन्नाटा पसर गया था—एक ऐसा सन्नाटा जो किसी तूफान से कम नहीं था। 1987 का वह साल सिर्फ एक तारीख नहीं था; यह एक ऐसा दंश था, जिसने जगपुरा की आत्मा को झकझोर कर रख दिया।
यह कहानी उस दंश की है, उस संघर्ष की है, और उस उम्मीद की है, जो सूखे के उस अंधेरे में भी कहीं न कहीं जिंदा थी। आगे के पन्नों में हम देखेंगे कि कैसे जगपुरा ने इस आपदा का सामना किया, कैसे खारी की गोद सूखने के बावजूद गाँव वालों ने हिम्मत नहीं हारी, और कैसे एक छोटे से गाँव की कहानी पूरे भारत के ग्रामीण जीवन की एक बड़ी सच्चाई को उजागर करती है। यह प्रस्तावना उस लंबी यात्रा का पहला कदम है, जो हमें समय, प्रकृति और इंसानी जज्बे की गहराइयों में ले जाएगी।

अध्याय 2: जगपुरा का सुनहरा युग

जगपुरा का सुनहरा युग एक ऐसी काल्पनिक तस्वीर नहीं था, जो किसी कहानीकार की कलम से उभरी हो; यह एक जीवंत सच्चाई थी, जो गाँव के हर कोने में बसी थी। यह वह दौर था जब प्रकृति और इंसान

के बीच एक अनकहा समझौता था—प्रकृति अपनी गोद भरती थी, और इंसान उसका सम्मान करता था। जगपुरा में सुबह का आलम कुछ ऐसा होता था कि सूरज की पहली किरणें जैसे खारी नदी के पानी को चूमने के लिए बेताब रहती थीं। जैसे ही सूर्योदय होता, गाँव का जीवन एक नई ऊर्जा के साथ जाग उठता। खारी के किनारे का दृश्य किसी उत्सव से कम नहीं होता था। बच्चे अपनी नन्ही टोलियों में नदी की ओर दौड़ पड़ते—कभी पानी में छलाँग लगाते, कभी मछलियाँ पकड़ने की कोशिश करते, और कभी एक-दूसरे पर पानी उछालते। उनकी किलकारियाँ और हँसी के स्वर हवा में तैरते हुए पूरे गाँव में गूँज उठते थे, मानो सुबह की शांति को एक मधुर संगीत से भर रहे हों।
नदी का किनारा सिर्फ बच्चों का खेल मैदान नहीं था; यह गाँव की महिलाओं के लिए भी जीवन का एक अहम हिस्सा था। सुबह होते ही वे अपने मटकों और कपड़ों के ढेर के साथ घाट पर जमा हो जाती थीं। पानी की लहरों के बीच कपड़े धोते हुए उनके गीत हवा में तैरने लगते—"खारी मइया, तोरी धारा में, हम सबको जीवन मिले..."। ये गीत सिर्फ शब्द नहीं थे; ये उनके दिल की पुकार थे, एक प्रार्थना थी जो खारी नदी के प्रति उनकी श्रद्धा को दर्शाती थी। इन गीतों में कृतज्ञता थी, प्यार था, और एक गहरा विश्वास था कि यह नदी उनकी हर जरूरत को पूरा करेगी। घाट पर बैठी महिलाएँ आपस में हँसती-बतियातीं, कभी अपनी सास की शिकायत करतीं, तो कभी बच्चों की शरारतों का जिक्र करतीं। यह एक ऐसा माहौल था, जो सादगी और सामुदायिकता का अनूठा संगम था।
दूसरी ओर, खेतों में एक अलग ही दुनिया बसती थी। जगपुरा की मिट्टी उपजाऊ थी, और खारी नदी का पानी उसे और भी समृद्ध बनाता था। खेतों में धान की हरियाली लहलहाती थी, मानो हरे रंग का एक विशाल कालीन बिछा हो। गेहूँ की बालियाँ पकने पर सोने की तरह चमकती थीं, और बाजरे की फसल अपनी सादगी में भी गाँव की शान को बढ़ाती थी। किसान सुबह से शाम तक खेतों में जुटे रहते—कभी हल चलाते, कभी बीज बोते, तो कभी फसल की देखभाल करते। उनकी मेहनत का फल इन फसलों में दिखता था, जो न सिर्फ उनके परिवार का पेट भरती थीं, बल्कि पास के बाजारों में भी बिकने जाती थीं। खेतों से उठती मिट्टी की सौंधी खुशबू और फसलों की लहराती हरियाली गाँव के सुनहरे युग की पहचान थी।
इन सबके बीच रामदीन की आवाज गाँव में एक अलग ही रौनक लाती थी। रामदीन, गाँव का सबसे बुजुर्ग किसान, जिसकी उम्र सत्तर के पार थी, लेकिन उसकी कमर अभी भी सीधी थी और आँखों में एक गजब का जोश था। वह अक्सर अपने खेत के किनारे बैठकर गाँव के बच्चों और जवानों को कहानियाँ सुनाया करता था। उसकी आवाज में एक गहराई थी, जो सुनने वालों को बाँध लेती थी। वह कहता, "खारी हमारी माँ है, इसके बिना हम अधूरे हैं।" यह वाक्य उसके लिए सिर्फ एक बात नहीं थी; यह

उसका जीवन दर्शन था। रामदीन ने अपनी जिंदगी का हर सुख-दुख खारी के किनारे देखा था। उसने बताया कि कैसे उसके दादा-परदादा भी इसी नदी के भरोसे खेती करते थे, और कैसे यह नदी पीढ़ियों से उनकी रक्षा करती आई थी। गाँव वाले उसकी बातों को ध्यान से सुनते, क्योंकि रामदीन का अनुभव उनके लिए एक किताब की तरह था—एक ऐसी किताब, जिसमें मेहनत, विश्वास और प्रकृति का सबक लिखा था।

रामदीन की बेटी लक्ष्मी इस सुनहरे युग की एक और नायिका थी। सोलह साल की यह नन्ही किशोरी गाँव की सबसे होनहार लड़कियों में से एक थी। उसकी आँखों में सपने थे, और हाथों में एक पुरानी बांसुरी, जिसे वह खारी के किनारे बैठकर बजाया करती थी। जब वह बांसुरी बजाती, तो उसकी धुन नदी की लहरों के साथ मिलकर एक ऐसी मिठास पैदा करती थी कि राहगीर भी ठहरकर सुनने को मजबूर हो जाते। लक्ष्मी का सपना था कि वह एक दिन गाँव की पहली शिक्षिका बनेगी। वह अक्सर अपने पिता से कहती, "बाबा, मैं पढ़-लिखकर गाँव के बच्चों को सिखाऊँगी, ताकि वे भी अपने सपने पूरे कर सकें।" रामदीन उसकी बात सुनकर मुस्कुराता और कहता, "बेटी, तू खारी की तरह है—शांत, लेकिन ताकतवर।" लक्ष्मी की बांसुरी और उसके सपने उस सुनहरे युग की उम्मीद का प्रतीक थे।

लोकोक्ति थी, "जब तक नदी बहे, तब तक घर में चूल्हा जले।" यह कहावत जगपुरा के लोगों के जीवन का आधार थी। नदी का बहना उनके लिए सिर्फ पानी की उपलब्धता नहीं था; यह उनके घरों में खुशहाली, रसोई में धुआँ, और जीवन में गति का संकेत था। खारी का पानी खेतों को सींचता था, मछलियाँ देता था, और गाँव की हर जरूरत को पूरा करता था। यह एक ऐसा चक्र था, जो बिना किसी रुकावट के चलता था। संस्कृत का एक श्लोक इस भाव को और गहराई देता है:

"सस्यं वर्षति संनादति, धरित्री च संनादति।"

(अर्थ: फसलें बरसती हैं, और धरती संनादति है।)

जगपुरा में यह श्लोक सचमुच जीवंत था। जब खेतों में फसलें लहलहाती थीं, तो ऐसा लगता था मानो धरती खुद खुशी से गुनगुना रही हो। पेड़ों पर चहकते परिंदे, खेतों में काम करते किसान, और नदी के किनारे गूँजते गीत—यह सब मिलकर एक संनाद पैदा करते थे, एक ऐसा संगीत जो प्रकृति और इंसान के बीच के तालमेल को दर्शाता था।

यह सुनहरा युग सिर्फ समृद्धि की कहानी नहीं था; यह एक ऐसी जिंदगी की मिसाल था, जहाँ सादगी में सुख था, मेहनत में संतोष था, और प्रकृति के साथ एक गहरा रिश्ता था। गाँव के मंदिर में हर शाम भजन गाए जाते थे, और हर त्योहार को पूरे गाँव मिलकर मनाते थे। होली में रंगों की बौछार, दीवाली में दीयों की रोशनी, और बरसात के मौसम में नदी किनारे नाच-गाना—यह सब जगपुरा की पहचान थी।

यहाँ के लोग भले ही गरीब थे, लेकिन उनके दिल अमीर थे। उनके पास संपत्ति नहीं थी, लेकिन उनके पास एक-दूसरे का साथ था, और खारी का आशीर्वाद था।
लेकिन यह सुनहरा युग हमेशा का नहीं था। यह संनाद, यह तालमेल, यह खुशहाली जल्द ही टूटने वाली थी। आसमान की उदारता खत्म होने वाली थी, और खारी की गोद सूखने वाली थी। आगे की कहानी उस सुनहरे युग के अंत की गवाह बनेगी—एक ऐसा अंत, जो न सिर्फ जगपुरा की धरती को, बल्कि वहाँ के लोगों के दिलों को भी झकझोर देगा।

अध्याय 3: अकाल की छाया

1987 का जून महीना आया, और इसके साथ ही जगपुरा के ऊपर एक ऐसी छाया मंडराने लगी, जिसे कोई देख नहीं सकता था, पर हर कोई महसूस कर रहा था। यह वह समय था जब गाँव की उम्मीदें आसमान की ओर टकटकी लगाए बैठी थीं। हर साल जून की शुरुआत में बादल अपने काले घने रंगों के साथ आते थे, हवाएँ ठंडी हो जाती थीं, और बारिश की बूँदें धरती को तृप्त कर देती थीं। लेकिन इस बार कुछ अलग था। बादल आए, सचमुच आए, पर वे आसमान में मँडराते रहे, जैसे कोई अनमना मेहमान जो आने तो आ जाए, पर मेहमाननवाजी का हिस्सा न बने। उनकी गोद से बारिश की एक बूँद भी नहीं गिरी। गाँव वाले हर सुबह आसमान को देखते, हाथ जोड़कर प्रार्थना करते, पर बादल बिना कुछ दिए चले जाते। यह सिर्फ मौसम का बदलाव नहीं था; यह एक भयानक संकेत था, जिसे समझने में अभी समय लगना था।
किसानों ने अपने खेतों में बीज बोए थे। धान, गेहूँ, बाजरा—हर बीज में उनकी मेहनत और उम्मीद का एक हिस्सा था। खेतों को तैयार करने में हफ्तों की मेहनत लगी थी—हल चलाना, मिट्टी को समतल करना, और फिर बीजों को बोने के लिए सही समय का इंतजार करना। लेकिन इस बार समय उनके साथ नहीं था। बीज मिट्टी में दब गए, पर पानी की एक बूँद भी उन्हें जीवन देने के लिए नहीं आई। दिन बीतते गए, और खेतों की मिट्टी सूखने लगी। पहले छोटी-छोटी दरारें दिखीं, फिर वे चौड़ी होती गईं, मानो धरती की त्वचा फट रही हो। खेतों में बोए गए बीज बिना अंकुरित हुए मिट्टी में ही दम तोड़ने लगे। यह दृश्य किसी का भी दिल दहला देता—एक ऐसी फसल जो कभी लहलहाने वाली थी, अब मृत पड़ी थी।
खारी नदी, जो गाँव की जीवन रेखा थी, वह भी इस अकाल की छाया से नहीं बच सकी। उसकी धारा, जो कभी उफान पर रहती थी, धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगी। पहले तो उसका बहाव मंद हुआ, फिर

लहरें छोटी होती गईं, और अंत में वह एक पतली सी रेखा में सिमट गई। नदी में मछलियाँ, जो बच्चों के लिए खेल और बड़ों के लिए भोजन का स्रोत थीं, एक-एक कर मरने लगीं। उनका मृत शरीर पानी की सतह पर तैरने लगा, और धीरे-धीरे किनारे पर जमा होने लगा। यह दृश्य देखकर गाँव वालों का कलेजा मुँह को आ गया। फिर किनारे की घास, जो कभी हरी-भरी रहती थी, पीली पड़ने लगी। पहले उसका रंग फीका हुआ, फिर वह सूखकर टूटने लगी, और अंत में वह भी मिट्टी में मिल गई। खारी अब वह नदी नहीं रही, जो गाँव को जीवन देती थी; वह एक सूखी निशानी बन गई थी, जिसके कंकड़-पत्थर नंगे होकर चिल्ला रहे थे कि अब यहाँ कुछ नहीं बचा।
गाँव में एक अजीब सा सन्नाटा छाने लगा। वह हँसी, वह किलकारियाँ, वह गीत जो कभी खारी के किनारे गूँजते थे, अब कहीं खो गए थे। सुबह का वह उत्साह, जब बच्चे नदी में कूदते थे और महिलाएँ गीत गाती थीं, अब एक दूर का सपना बन गया था। लोग अपने घरों में सिमटने लगे, और खेतों में जाने की हिम्मत कम होती गई। हर चेहरा उदास था, हर आँख में एक सवाल था—यह सब कब खत्म होगा? इस सन्नाटे में सिर्फ हवा की सनसनाहट सुनाई देती थी, जो सूखी पत्तियों को उड़ाकर और भी खामोशी बिखेर देती थी। यह सन्नाटा सिर्फ शोर की कमी नहीं था; यह उम्मीद की चुप्पी थी, जो गाँव की आत्मा को कुचल रही थी।
आरिफ, एक युवा किसान, इस अकाल का सबसे बड़ा शिकार था। वह अभी तीस साल का भी नहीं हुआ था, पर उसकी जिम्मेदारियों ने उसे समय से पहले बूढ़ा कर दिया था। उसके दो छोटे बच्चे थे, और एक पत्नी जो हर दिन उससे उम्मीद भरी नजरों से देखती थी। आरिफ ने अपने खेत में धान के बीज बोए थे, यह सोचकर कि इस बार भी फसल अच्छी होगी और वह अपने परिवार को सुखी रख सकेगा। लेकिन जब वह अपने खेत में खड़ा हुआ, तो उसके सामने सिर्फ सूखी मिट्टी थी। उसने अपने हाथों से मिट्टी को छुआ, और उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। वह रोते हुए बोला, “मैंने अपने हाथों से बीज बोए, पर अब ये मिट्टी मेरे बच्चों की तरह प्यासी है। मैं क्या जवाब दूँगा अपने परिवार को?” उसकी आवाज में दर्द था, बेबसी थी, और एक गहरा गुस्सा था—प्रकृति पर, आसमान पर, और शायद खुद पर भी। आरिफ का यह रोना सिर्फ उसका नहीं, पूरे गाँव का दर्द था।
रामदीन, गाँव का सबसे बुजुर्ग और समझदार शख्स, इस संकट को चुपचाप नहीं देख सकता था। उसने एक दिन गाँव वालों को मंदिर के आँगन में इकट्ठा किया। उसकी झुर्रियों भरी आँखों में अभी भी एक चमक थी, एक विश्वास था कि शायद कुछ किया जा सकता है। उसने कहा, “हमें इंद्रदेव को मनाना होगा। यह सूखा कोई सजा नहीं, बल्कि एक परीक्षा है। अगर हम सब मिलकर प्रार्थना करें, तो शायद आसमान पसीज जाए।” गाँव वालों ने उसकी बात मानी। अगले दिन मंदिर में एक बड़ी पूजा का

आयोजन हुआ। पंडित ने मंत्रों का जाप शुरू किया, घंटियाँ बजीं, धूप की खुशबू हवा में फैली, और गाँव वाले हाथ जोड़कर खड़े रहे। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, सभी ने अपनी आँखें आसमान की ओर उठाईं। मंत्र गूँजते रहे—"ॐ नमो भगवते इंद्राय, वर्षं देहि..."—पर आसमान खामोश रहा। पूजा खत्म हुई, लोग थककर घर लौट गए, लेकिन बादल नहीं आए। यह एक और झटका था, जो गाँव की उम्मीद को और कमजोर कर गया।

मुहावरा था, "आसमान से उम्मीद टूटी, मानो आँखों का पानी सूख गया।" यह कहावत अब सच हो चुकी थी। गाँव वालों की आँखों में आँसू थे, पर वह भी सूख रहे थे, जैसे उनकी उम्मीदें सूख रही थीं। संस्कृत का एक श्लोक इस हालात को और गहराई से बयान करता है:

"यदा वर्षति न मेघः, तदा सर्वं विनश्यति।"

(अर्थ: जब मेघ नहीं बरसते, तब सब कुछ नष्ट हो जाता है।)

यह श्लोक अब जगपुरा की हकीकत बन गया था। खारी की लहरें पूरी तरह रुक गई थीं। उसकी सतह पर अब पानी नहीं, बल्कि कंकड़-पत्थर नंगे पड़े थे। वह नदी, जो कभी गाँव की माँ थी, अब एक मृत शरीर की तरह बिछी थी। उसके किनारे पर कोई बच्चा नहीं खेलता था, कोई महिला गीत नहीं गाती थी। खेत सूख गए, मवेशी भूख से बिलबिलाने लगे, और गाँव का जीवन एक ठहरे हुए तालाब की तरह स्थिर हो गया।

यह अकाल की छाया थी—एक ऐसी छाया जो सिर्फ धरती को नहीं, बल्कि लोगों के मन को भी अंधेरे में डुबो रही थी। यह अध्याय उस दौर की कहानी है, जब प्रकृति ने अपना क्रूर रूप दिखाया, और जगपुरा के लोग अपनी हिम्मत की सबसे बड़ी परीक्षा से गुजरने को मजबूर हुए। आगे की कहानी बताएगी कि इस अंधेरे में भी कोई रोशनी थी, या यह छाया हमेशा के लिए गाँव को निगल गई।

अध्याय 4: फसल का अंत और भूख की मार

जगपुरा में अकाल की छाया अब सिर्फ एक संकेत नहीं रही थी; वह एक भयावह सच्चाई बन चुकी थी, जो गाँव के हर घर, हर खेत, और हर दिल तक फैल गई थी। खेतों में जो थोड़े-बहुत पौधे उम्मीद की किरण बनकर उगे थे, वे भी सूरज की तपिश के आगे हार मान गए। धान के नन्हे पौधे, जो कभी हरे-भरे होकर लहलहाने की तैयारी में थे, अब पीले पड़ गए। उनकी पतली-सी डंडियाँ पहले झुकीं, फिर मुरझाईं, और अंत में सूखकर मिट्टी में मिल गईं। खेतों में अब फसल की जगह धूल उड़ने लगी थी। हवा के झोंके उस धूल को आसमान की ओर उठाते, और वह धूल गाँव की गलियों में बिखर जाती, मानो

प्रकृति भी अब गाँव वालों का मज़ाक उड़ा रही हो। बाजरे के खेत, जो कभी सादगी में भी गर्व का प्रतीक थे, अब एक मरुस्थल में बदल गए। उनकी सूखी टहनियाँ हवा में झूलती थीं, जैसे किसी भूतिया परिदृश्य का हिस्सा हों। यह फसल का अंत था—एक ऐसा अंत जिसने गाँव की नींव को हिला दिया।
इसके साथ ही भूख ने गाँव में दस्तक दी। यह कोई मामूली भूख नहीं थी; यह एक ऐसी आग थी, जो पेट में जलती थी और आत्मा को खोखला करती थी। घरों में अनाज के भंडार खाली हो गए थे। जो थोड़ा-बहुत अनाज बचा था, उसे लोग बड़े जतन से इस्तेमाल करते थे, लेकिन वह भी अब खत्म होने की कगार पर था। लक्ष्मी की माँ, सावित्री, एक ऐसी माँ थी जिसके लिए अपने बच्चों का पेट भरना जीवन का सबसे बड़ा धर्म था। लेकिन अब उसके सामने एक ऐसी मजबूरी खड़ी थी, जिसने उसके हाथ-पैर बाँध दिए थे। रसोई में आटा खत्म हो चुका था, और चूल्हे पर सिर्फ एक सूखी रोटी का टुकड़ा बचा था। उसने अपने बच्चों को वह टुकड़ा देने की कोशिश की, पर उनकी भूख उस छोटे से टुकड़े से कहीं बड़ी थी। सावित्री की आँखों में आँसू छलक आए, और उसने बेबसी से कहा, "मेरे पास कुछ नहीं बचा, अब इनकी भूख कैसे शांत करूँ?" उसकी आवाज में दर्द था, एक माँ का वह दुख था जो अपने बच्चों को भूखा देखकर टूट रही थी।
सावित्री की यह हालत सिर्फ उसकी नहीं, गाँव के हर घर की कहानी थी। भूख अब एक अनचाहा मेहमान बनकर हर आँगन में दाखिल हो चुकी थी। आरिफ का छोटा बेटा, हसन, सिर्फ पाँच साल का था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें कभी शरारत से चमकती थीं, पर अब उनमें सिर्फ भूख की उदासी झलकती थी। हर रात वह अपने छोटे से पेट को पकड़कर रोता था। उसकी माँ, फातिमा, उसे गोद में लेकर चुप कराने की कोशिश करती, पर उसकी गोद भी अब खाली थी। एक रात, जब हसन की भूख से बिलखने की आवाज असहनीय हो गई, फातिमा ने उसे सीने से लगाया और एक खाली लोरी गाई—"सो जा मेरे लाल, चाँद आएगा, सपनों में रोटी लाएगा..."। यह लोरी सिर्फ शब्दों का खेल नहीं थी; यह एक माँ की वह कोशिश थी, जो अपने बच्चे को भूख के दर्द से बचाने के लिए झूठी उम्मीद का सहारा ले रही थी। लेकिन हसन की आँखें उस रात भी सूखी रहीं—न नींद से, बल्कि भूख से। उसका रोना धीरे-धीरे कमजोर पड़ गया, क्योंकि उसके छोटे शरीर में अब रोने की ताकत भी नहीं बची थी।
लोकोक्ति थी, "भूखे पेट भजन न होए।" यह कहावत अब जगपुरा के हर घर में सच साबित हो रही थी। मंदिर, जो कभी भजनों और प्रार्थनाओं से गूँजता था, अब खामोश था। लोग अब वहाँ नहीं जाते थे, क्योंकि भूख ने उनकी आत्मा को इतना कमजोर कर दिया था कि ईश्वर से भी शिकायत करने की हिम्मत नहीं बची थी। संस्कृत का एक श्लोक इस हालात को और गहराई से बयान करता है:
"अन्नं नास्ति चेत् प्राणाः, कथं जीवनं भवेत्।"

(अर्थ: यदि अन्न नहीं है, तो जीवन कैसे संभव होगा?)
यह श्लोक अब गाँव की हर साँस में गूँज रहा था। अनाज के बिना जीवन सिर्फ एक खोखला ढाँचा बनकर रह गया था। बच्चे भूख से बिलखते थे, बूढ़े चुपचाप कोने में पड़े रहते थे, और जवान अपनी बेबसी पर आँसू बहाते थे। यह भूख सिर्फ पेट की नहीं थी; यह एक ऐसी मार थी, जो गाँव की खुशहाली, उसकी एकता, और उसकी उम्मीद को भी खा रही थी।
गाँव की हर गली में मातम छा गया था। वह हँसी, वह बातचीत, वह आपसी स्नेह जो कभी गलियों में गूँजता था, अब कहीं गायब हो गया था। लोग एक-दूसरे से नजरें चुराने लगे थे, क्योंकि हर चेहरा एक ही कहानी कह रहा था—भूख और बेबसी की कहानी। परिवार बिखरने लगे थे। कुछ लोग गाँव छोड़कर शहर की ओर पलायन करने की सोचने लगे थे, जहाँ शायद मजदूरी करके दो वक्त की रोटी मिल जाए। लेकिन यह फैसला भी आसान नहीं था। गाँव छोड़ने का मतलब था अपनी जड़ों को छोड़ना, अपनी मिट्टी को छोड़ना, और उस खारी को छोड़ना, जो अब सूख चुकी थी, पर फिर भी उनके दिलों में बसी थी। कई परिवारों में झगड़े होने लगे थे—कभी अनाज के आखिरी दाने को लेकर, तो कभी भविष्य की अनिश्चितता को लेकर। भूख ने न सिर्फ उनके पेट को खाली किया था, बल्कि उनके रिश्तों को भी कमजोर कर दिया था।
सावित्री जैसी माँएँ अब अपने बच्चों को देखकर चुपचाप रोती थीं। उनके हाथ, जो कभी रोटियाँ बनाने में माहिर थे, अब खाली थे। बच्चों की भूखी नजरें उन्हें हर पल तोड़ रही थीं। आरिफ जैसे जवान अब अपने खेतों में नहीं जाते थे, क्योंकि वहाँ अब कुछ नहीं बचा था—न फसल, न उम्मीद। हसन जैसे बच्चे अब खेलना भूल गए थे; उनकी दुनिया सिर्फ भूख और उसकी मार तक सिमट गई थी। गाँव के मवेशी भी भूख से मरने लगे थे। गायें और भैंसें, जो कभी दूध देती थीं, अब हड्डियों का ढाँचा बन गई थीं। उनकी कमजोर आवाजें गाँव में एक और दर्दनाक संगीत जोड़ रही थीं।
यह भूख की मार सिर्फ शारीरिक नहीं थी; यह एक मानसिक और भावनात्मक यातना थी। लोग दिन-ब-दिन कमजोर होते जा रहे थे। बच्चों के चेहरे पर कुपोषण की छाया दिखने लगी थी—उनकी आँखें धँस गई थीं, और गाल हड्डियों से चिपक गए थे। बूढ़ों की साँसें भारी होने लगी थीं, क्योंकि उनके शरीर में अब जिंदगी को चलाने की ताकत नहीं बची थी। गाँव का वह सुनहरा युग, जो कभी खारी की गोद में पला था, अब एक दुखद याद बनकर रह गया था। यह अध्याय उस दौर की कहानी है, जब फसल का अंत हुआ, और भूख की मार ने जगपुरा को अपने घेरे में ले लिया। आगे की कहानी बताएगी कि क्या इस अंधेरे में कोई रोशनी बची थी, या यह मार गाँव को हमेशा के लिए निगल गई।

अध्याय 5: पलायन का दर्द

जगपुरा में जब भूख की मार असहनीय हो गई, तो वह दिन आ ही गया जिसका डर हर गाँव वाले को था। यह वह क्षण था जब मजबूरी ने लोगों के पैरों को अपने घरों से दूर जाने के लिए मजबूर कर दिया। भूख अब सिर्फ एक शारीरिक पीड़ा नहीं थी; यह एक ऐसी ताकत बन चुकी थी, जो परिवारों को तोड़ रही थी, जड़ों को उखाड़ रही थी, और उस मिट्टी से दूर ले जा रही थी, जिसे वे अपनी जान से ज्यादा प्यार करते थे। गाँव की गलियाँ, जो कभी हँसी-खुशी और आपसी बातचीत से भरी रहती थीं, अब खामोश थीं। लोग अपने घरों को छोड़कर शहर की ओर चल पड़े—कुछ उम्मीद की तलाश में, कुछ इसलिए कि उनके पास कोई और रास्ता नहीं बचा था। यह पलायन सिर्फ जगह बदलना नहीं था; यह एक ऐसा दर्द था, जो हर कदम के साथ गहराता जाता था।

आरिफ, वह युवा किसान जिसके सपनों में कभी अपने खेतों की हरियाली बस्ती थी, अब उस सपने को पीछे छोड़ने को मजबूर हो गया। उसने अपनी पत्नी फातिमा और छोटे बेटे हसन को साथ लिया, और एक पुराने थैले में अपनी जिंदगी के कुछ टुकड़े समेटे—दो जोड़ी कपड़े, एक टूटी चप्पल, और थोड़ा-सा सूखा अनाज जो किसी तरह बचा हुआ था। जब वह अपने घर की चौखट से बाहर निकला, तो उसने एक बार पीछे मुड़कर देखा। वह मिट्टी का घर, जिसे उसके दादा ने अपने हाथों से बनाया था, अब एक सूनी याद बनकर रह गया था। उसकी आँखें नम थीं, पर वह चुप रहा। रास्ते में हसन, जो अभी भी भूख से कमजोर था, अपने छोटे हाथों से आरिफ का कुरता पकड़े हुए चल रहा था। अचानक उसने मासूमियत से पूछा, “अब्बू, हमारा घर कब लौटेगा?” यह सवाल एक तीर की तरह आरिफ के दिल में चुभ गया। उसकी आँखों में आँसू थे, पर जवाब नहीं। वह क्या कहता? कि शायद वे कभी लौट न सकें? कि उनका घर अब सिर्फ एक याद बनकर रह गया है? आरिफ ने हसन को कंधे पर उठा लिया और चुपचाप आगे बढ़ गया, पर उसका मन पीछे उसी घर में अटका रहा।

सभी लोग शहर की ओर नहीं गए। कुछ ऐसे भी थे, जिनके लिए अपनी मिट्टी छोड़ना मौत से भी बदतर था। लक्ष्मी और उसके पिता रामदीन उनमें से थे। रामदीन, जिसकी जिंदगी खारी नदी और उसकी मिट्टी के इर्द-गिर्द बसी थी, ने गाँव छोड़ने से साफ इनकार कर दिया। एक शाम, जब लक्ष्मी ने उससे शहर चलने की बात कही, तो रामदीन ने अपनी पुरानी लाठी टेकते हुए कहा, “मैं इस मिट्टी को छोड़कर नहीं जाऊँगा, यहाँ मरूँगा तो भी खारी के पास।” उसकी आवाज में एक अजीब सख्ती थी, एक ऐसा जुनून था जो उसकी उम्र को मात दे रहा था। वह जानता था कि गाँव में अब कुछ नहीं बचा—न खाना, न पानी, न उम्मीद—पर फिर भी वह अपनी जड़ों से जुड़ा रहा। लक्ष्मी ने अपने पिता की बात मानी, पर उसके मन

में एक खालीपन था। उसकी बांसुरी, जो कभी खारी के किनारे मधुर धुनें छेड़ती थी, अब चुप थी। वह अब नदी किनारे नहीं जाती थी, क्योंकि वहाँ अब न पानी था, न संगीत। उसकी उंगलियाँ बांसुरी को छूती थीं, पर होंठ उसे बजाने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे। लक्ष्मी का सपना—गाँव की पहली शिक्षिका बनने का—अब एक धुँधली याद बनकर रह गया था।
उधर, शहर में आरिफ और उसके परिवार का जीवन एक नई जंग बन गया। शहर की चकाचौंध उनके लिए कोई उम्मीद नहीं लाई; वहाँ सिर्फ मेहनत, पसीना, और एक अनजान दुनिया थी। आरिफ को एक ईंट भट्टे पर काम मिला। वहाँ दिन-रात चिलचिलाती धूप में ईंटें ढोता, और उसकी पीठ सूरज की तपिश से झुलसने लगी। उसका चेहरा पसीने और धूल से सन जाता था, और हाथों में छाले पड़ गए थे। यह वही आरिफ था, जो कभी अपने खेतों में गर्व से हल चलाता था, पर अब वह एक मजदूर बन गया था—एक ऐसा मजदूर जिसके पास न अपनी जमीन थी, न अपनी पहचान। उसकी पत्नी फातिमा ने भी मजदूरी शुरू कर दी। वह दूसरों के घरों में बर्तन माँजती, कपड़े धोती, और जो थोड़ा-बहुत पैसा मिलता, उसे बच्चों के लिए बचाती। हसन दिनभर सड़क किनारे बैठा रहता, जहाँ वह गंदे कपड़ों में खेलने की कोशिश करता, पर उसकी आँखों में अब वह चमक नहीं थी। शहर ने उन्हें रोटी तो दी, पर वह रोटी उनकी आत्मा को नहीं भर सकी।
मुहावरा था, "अपना घर छोड़ना, मानो दिल पर पत्थर रखना।" यह कहावत अब हर उस शख्स की सच्चाई थी, जो जगपुरा से शहर की ओर गया था। घर छोड़ना सिर्फ एक जगह छोड़ना नहीं था; यह अपनी यादों, अपने सपनों, और अपनी पहचान को पीछे छोड़ना था। हर कदम के साथ उनके दिल पर एक बोझ बढ़ता जाता था, एक ऐसा पत्थर जो न दिखता था, पर हर पल उन्हें कुचल रहा था। संस्कृत का एक श्लोक इस दर्द को और गहराई से बयान करता है:
"गृहं त्यक्त्वा गतः दूरं, दुःखं तस्य न शाम्यति।"
(अर्थ: घर छोड़कर दूर जाने वाला, उसका दुख शांत नहीं होता।)
आरिफ और उसके जैसे अनगिनत लोग इस श्लोक को अपनी जिंदगी में जी रहे थे। शहर में उन्हें काम मिला, रोटी मिली, पर वह सुख, वह शांति जो गाँव की मिट्टी में थी, वह कहीं गायब हो गई थी। उनका दुख न दिन में कम होता था, न रात में। हर रात हसन की नींद में भी एक सवाल गूँजता था—"हमारा घर कब लौटेगा?"—और हर सुबह वह सवाल अनुत्तरित रह जाता था।
जगपुरा अब एक खामोश खंडहर बन चुका था। जो लोग पीछे रह गए थे—जैसे रामदीन और लक्ष्मी—वे भी किसी तरह जिंदगी को थामे हुए थे। गाँव की गलियाँ सुनसान थीं, घरों के दरवाजे बंद थे, और खेतों में सिर्फ धूल बची थी। खारी नदी, जो कभी गाँव की धड़कन थी, अब एक सूखा गड्ढा बन गई थी। उसके

किनारे अब न बच्चे खेलते थे, न महिलाएँ गीत गाती थीं। मंदिर की घंटियाँ खामोश थीं, और वह रौनक जो कभी गाँव की पहचान थी, अब एक धुँधली याद बनकर रह गई थी। पलायन ने गाँव को खाली कर दिया था—कुछ लोग शारीरिक रूप से चले गए थे, और जो बचे थे, उनके मन भी सूने हो गए थे। यह अध्याय उस दर्द की कहानी है, जब लोग अपनी जड़ों से उखड़ गए, और जगपुरा एक जीवंत गाँव से एक मृत खंडहर में बदल गया। आगे की कहानी बताएगी कि क्या इस खामोशी में कोई उम्मीद बची थी, या यह दर्द हमेशा के लिए गाँव की नियति बन गया।

अध्याय 6: पीछे रह गए: अनसुनी चीखें

जगपुरा में जो लोग पीछे रह गए, उनके लिए जीवन अब एक अनचाही सजा बन चुका था। पलायन ने गाँव को खाली कर दिया था, पर जो बचे थे, वे न तो पूरी तरह जीवित थे, न ही पूरी तरह मृत। उनकी साँसें चल रही थीं, पर आत्मा सूखे खेतों की तरह बंजर हो चुकी थी। यह वह दौर था जब हर सुबह एक नई चुनौती लेकर आती थी, और हर रात एक पुराने दर्द को गहरा कर जाती थी। गाँव की गलियाँ, जो कभी बच्चों की किलकारियों और बड़ों की बातचीत से गूँजती थीं, अब एक भयानक खामोशी में डूब गई थीं। हवा में अब न फसल की खुशबू थी, न खारी की लहरों की आवाज; सिर्फ एक सूखी सनसनाहट थी, जो उस खामोशी को और गहरा कर देती थी। जो लोग गाँव में रह गए थे, उनकी चीखें अनसुनी थीं —न आसमान सुन रहा था, न धरती, और न ही वे लोग जो शहर की ओर चले गए थे।

रामदीन उनमें से एक था, जो अपनी मिट्टी से अलग होने की कल्पना भी नहीं कर सकता था। वह हर सुबह अपनी पुरानी लाठी के सहारे खारी के सूखे तट पर जाता और घंटों वहाँ बैठा रहता। उसकी आँखें उस गड्ढे को निहारती थीं, जहाँ कभी पानी की लहरें नाचती थीं। अब वहाँ सिर्फ कंकड़-पत्थर और सूखी मिट्टी थी, पर रामदीन के लिए वह जगह अभी भी जिंदा थी। वहाँ बैठकर वह पुरानी यादें ताजा करता—वह दिन जब खारी उफान पर होती थी, जब उसके खेतों में फसलें लहलहाती थीं, और जब उसकी पत्नी उसके लिए खेत में खाना लेकर आती थी। उसकी पत्नी अब इस दुनिया में नहीं थी; कई साल पहले वह बीमारी से चल बसी थी। अब उसकी एकमात्र सहारा थी लक्ष्मी, उसकी बेटी, जो उसके साथ इस सजा को भोग रही थी। रामदीन की झुर्रियों भरी आँखों में अब भी एक चमक थी, पर वह चमक उम्मीद की नहीं, बल्कि अतीत की यादों की थी।

एक रात, जब ठंडी हवा गाँव में सनसनाने लगी, लक्ष्मी अपने पिता के पास बैठी। उसकी आँखें उदास थीं, और मन में एक सवाल बार-बार उठ रहा था। उसने हिम्मत जुटाकर कहा, “बाबा, क्या हम भी शहर चले जाएँ? यहाँ अब कुछ नहीं बचा।” उसकी आवाज में एक टूटन थी, एक ऐसी बेबसी जो उसकी उम्र

से कहीं बड़ी थी। रामदीन ने उसकी ओर देखा, और उसकी आँखों में एक ठहराव था। उसने अपनी कमजोर, काँपती आवाज में जवाब दिया, "नहीं बेटी, यहाँ मरेंगे तो भी अपनी मिट्टी में। मैं उस खारी को छोड़कर नहीं जाऊँगा, जो मेरे लिए माँ थी।" यह जवाब सिर्फ शब्द नहीं था; यह उसकी जिद थी, उसका विश्वास था, और उसकी आखिरी उम्मीद थी। लक्ष्मी ने कुछ नहीं कहा। वह जानती थी कि उसके पिता का फैसला अटल था। पर उसके मन में एक तूफान उठ रहा था—क्या यह जिद सही थी? क्या इस सूखे गाँव में रहना अब समझदारी थी? पर वह अपने पिता को अकेले नहीं छोड़ सकती थी। वह चुपचाप उठी और अपनी बांसुरी को देखने लगी, जो अब धूल से सनी पड़ी थी। उसकी धुनें अब खामोश थीं, और उसके सपने भी।

रामदीन और लक्ष्मी अकेले नहीं थे। गाँव में कुछ और लोग भी थे, जो अपनी जड़ों से बंधे रह गए थे। उनमें से एक थी गंगा, एक बूढ़ी अम्मा, जिसकी उम्र अस्सी के पार थी। उसके झुर्रियों भरे चेहरे पर समय की गहरी छाप थी, और उसकी कमर इतनी झुक गई थी कि वह अब सीधे खड़ी भी नहीं हो सकती थी। गंगा का बेटा शहर चला गया था, पर उसने अपने छोटे से पोते को गंगा के पास छोड़ दिया था। वह पोता, जिसका नाम छोटू था, अब उसकी जिंदगी का एकमात्र सहारा था। लेकिन भूख ने उस सहारे को भी छीनने की ठान ली थी। एक दिन छोटू भूख से बिलखने लगा। उसकी कमजोर आवाज गंगा के कानों में चुभ रही थी। गंगा ने उसे गोद में लिया, पर उसके पास देने को कुछ नहीं था। उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे, और वह रोते हुए बोली, "मैं इसे क्या खिलाऊँ, मेरे पास तो आँसुओं के सिवा कुछ नहीं।" यह सिर्फ एक वाक्य नहीं था; यह उसकी बेबसी की चीख थी, जो गाँव की खामोशी में गूँज रही थी। छोटू की भूखी नजरें गंगा को हर पल तोड़ रही थीं, और वह कुछ नहीं कर सकती थी। उस रात छोटू की रोने की आवाज धीरे-धीरे कमजोर पड़ गई, क्योंकि उसके छोटे शरीर में अब ताकत नहीं बची थी।

लोकोक्ति थी, "जो पास रहे, सो आपदा सहे।" यह कहावत अब उन लोगों की सच्चाई बन गई थी, जो गाँव में रह गए थे। शहर जाने वाले अपने दुख लेकर गए थे, पर पीछे रहने वालों की आपदा इससे भी बड़ी थी। उनके पास न भोजन था, न पानी, और न ही कोई उम्मीद। वे हर दिन एक नई सजा भोग रहे थे—भूख की सजा, अकेलेपन की सजा, और उस खामोशी की सजा जो उनके चारों ओर फैल गई थी। संस्कृत का एक श्लोक इस हालात को और गहराई से बयान करता है:

"दुःखेन संनादति हृदयं, यदा नास्ति संनादति जीवनम्।"

(अर्थ: जब जीवन संनाद नहीं करता, हृदय दुख से संनाद करता है।)

जगपुरा में अब जीवन का वह संनाद—वह संगीत, वह खुशी—खत्म हो चुका था। खारी की लहरें रुक गई थीं, खेत सूख गए थे, और लोगों के दिल दुख से चीख रहे थे। यह चीखें बाहर नहीं सुनाई देती थीं;

वे उनके भीतर ही गूँजती थीं, और हर गूँज के साथ उनकी आत्मा को और खोखला करती थीं।
गाँव की हँसी अब हमेशा के लिए खामोश हो गई थी। मंदिर में अब कोई भजन नहीं गाया जाता था; उसकी घंटियाँ जंग खा रही थीं। खारी का तट, जो कभी बच्चों के खेल और महिलाओं के गीतों से भरा रहता था, अब एक सूना कब्रिस्तान बन गया था। घरों के दरवाजे बंद थे, और जो खुले थे, उनके भीतर सिर्फ उदासी बसी थी। गंगा जैसी बूढ़ी अम्मा अपने पोते को सीने से लगाकर रोती थी, रामदीन अपनी यादों में खोया रहता था, और लक्ष्मी अपने सपनों को भूलने की कोशिश करती थी। ये लोग जिंदा थे, पर उनकी जिंदगी मृत्यु से भी बदतर हो चुकी थी। यह अनसुनी चीखें थीं—उनकी पीड़ा, उनकी बेबसी, और उनकी वह हिम्मत जो अब टूटने की कगार पर थी।
यह अध्याय उन लोगों की कहानी है, जो पीछे रह गए—उनकी अनसुनी चीखों की कहानी, जो गाँव की खामोशी में दब गई थीं। आगे की कहानी बताएगी कि क्या इस सजा में कोई राहत थी, या यह खामोशी हमेशा के लिए उनकी नियति बन गई।

अध्याय 7: आज का सबक और भविष्य

1987 का अकाल सिर्फ एक प्राकृतिक आपदा नहीं था; यह एक ऐसा दर्पण था, जिसमें जगपुरा के लोगों ने अपनी कमजोरियाँ, अपनी गलतियाँ, और अपनी मजबूरियाँ देखी थीं। यह वह साल था, जिसने गाँव की हँसी को खामोश कर दिया, खारी नदी को सूखा डाल दिया, और एक समुदाय को बिखेर दिया। लेकिन समय के साथ, उस अकाल ने एक गहरा सबक भी छोड़ा—एक ऐसा सबक जो सिर्फ जगपुरा के लिए नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक चेतावनी बन गया। खारी का सूखना केवल पानी का अंत नहीं था; यह उस जीवन का अंत था, जो नदी की गोद में पला था। यह एक समुदाय का बिखरना था, जो कभी एक-दूसरे के सुख-दुख में साथ खड़ा रहता था। पर उस बिखराव के बीच से कुछ लोग फिर उठे, और उन्होंने उस अंधेरे से सीख लेकर अपने भविष्य को नया आकार दिया। यह अध्याय उस सबक की कहानी है, और उस भविष्य की, जो अब हमारे सामने है।
आज, इतने सालों बाद, लक्ष्मी की जिंदगी उस छोटे से गाँव की सीमाओं से बहुत आगे बढ़ चुकी है। वह अब शहर में एक शिक्षिका है। उसके सपने, जो कभी खारी के किनारे बांसुरी की धुनों में गूँजते थे, अब हकीकत बन चुके हैं। वह एक छोटे से स्कूल में बच्चों को पढ़ाती है—उनके लिए अक्षरों की माला गढ़ती है, उन्हें गणित सिखाती है, और उनके सपनों को पंख देती है। उसके चेहरे पर अब एक आत्मविश्वास की मुस्कान है, पर उसकी आँखों में एक पुराना दर्द अभी भी छिपा है। जब वह अपने छात्रों को पढ़ाने के

बाद चुपचाप बैठती है, तो उसका मन अक्सर जगपुरा की ओर लौट जाता है। एक दिन, जब एक बच्चे ने उससे पूछा कि वह इतनी उदास क्यों रहती है, तो लक्ष्मी ने गहरी साँस ली और कहा, "मैंने बच्चों को पढ़ाया, पर खारी की चुप्पी को कभी नहीं भूला।" यह चुप्पी उसके लिए सिर्फ एक नदी का सूखना नहीं था; यह उसकी जड़ों का खामोश हो जाना था, उसकी बांसुरी का रुक जाना था, और उस सुनहरे युग का खत्म हो जाना था, जो कभी उसका घर था।

लक्ष्मी की तरह, कई लोग उस अकाल से उबरे और अपनी जिंदगी को नए सिरे से शुरू किया। आरिफ, जो शहर में ईंट भट्टों पर झुलसता था, अब एक छोटी सी दुकान चलाता है। उसका बेटा हसन अब बड़ा हो गया है और मजदूरी करता है। वे गाँव नहीं लौटे, पर उनकी यादों में जगपुरा अभी भी जिंदा है। रामदीन अब इस दुनिया में नहीं है; वह अपनी मिट्टी में ही दफन हुआ, जैसा उसने कहा था। लेकिन उसकी जिद, उसका विश्वास, और उसकी कहानियाँ लक्ष्मी के जरिए आज भी जीवित हैं। ये लोग भले ही आगे बढ़ गए हों, पर उनके दिल में एक कसक बाकी है—एक सवाल कि क्या उस अकाल को रोका जा सकता था? क्या खारी को बचाया जा सकता था? और क्या उस समुदाय को बिखरने से बचाया जा सकता था?

मुहावरा है, "जो बीत गया, सो सीख बन गया।" यह कहावत 1987 के अकाल की सबसे बड़ी सच्चाई थी। वह साल बीत गया, पर उसने जो दर्द दिया, वह एक सबक बनकर रह गया। यह सबक था कि प्रकृति के साथ हमारा रिश्ता एकतरफा नहीं हो सकता। हम जितना प्रकृति से लेते हैं, उतना ही उसे लौटाना भी जरूरी है। खारी का सूखना सिर्फ बारिश की कमी की वजह से नहीं हुआ था; यह इंसान की लापरवाही, उसकी लालच, और उसकी अनदेखी का भी नतीजा था। गाँव वालों ने सालों तक खारी से लिया—उसका पानी खेतों में डाला, उसकी मछलियाँ खाईं, और उसकी गोद में जीवन बिताया—पर उसे बचाने की कोशिश कितनी की? यह सवाल अब उनके सामने था, और यह सवाल आज भी हमारे सामने है।

संस्कृत का एक श्लोक इस सबक को और गहराई देता है:

"प्रकृतिः माता सर्वस्य, तस्याः रक्षा करोम्यहम्।"

(अर्थ: प्रकृति सबकी माता है, उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है।)

यह श्लोक एक साधारण सत्य को उजागर करता है—प्रकृति हमारी माँ है। जैसे एक माँ अपने बच्चों को पालती है, वैसे ही प्रकृति हमें जीवन देती है। पर एक माँ की तरह, वह भी सम्मान और देखभाल की हकदार है। 1987 में जब खारी सूखी, तो वह सिर्फ एक नदी का अंत नहीं था; वह प्रकृति की चेतावनी थी कि अगर हम उसकी रक्षा नहीं करेंगे, तो वह भी हमें छोड़ देगी। यह श्लोक आज हमारे लिए एक मंत्र

होना चाहिए—एक ऐसा मंत्र जो हमें याद दिलाए कि हमारा भविष्य प्रकृति के हाथों में है, और उसकी रक्षा हमारा कर्तव्य है।
आज जब लक्ष्मी अपने छात्रों को पढ़ाती है, तो वह उन्हें सिर्फ किताबी ज्ञान नहीं देती। वह उन्हें खारी की कहानी सुनाती है—कैसे एक नदी गाँव की माँ थी, और कैसे उसकी चुप्पी ने सब कुछ बदल दिया। वह बच्चों को सिखाती है कि पानी को बचाना कितना जरूरी है, कि पेड़ों को काटने से पहले सोचना चाहिए, और कि धरती को सिर्फ लेने की चीज नहीं समझना चाहिए। वह कहती है, "हमें प्रकृति से संधि करनी होगी, ताकि कोई और खारी न सूखे।" यह संधि सिर्फ शब्दों की नहीं, बल्कि कर्मों की होनी चाहिए। यह संधि है पानी की बर्बादी रोकने की, जंगलों को बचाने की, और नदियों को स्वच्छ रखने की। यह संधि है एक ऐसे भविष्य की, जहाँ कोई और गाँव खंडहर न बने, और कोई और समुदाय न बिखरे।
1987 का अकाल अब इतिहास का हिस्सा है, पर उसकी गूँज आज भी सुनाई देती है। यह हमें याद दिलाता है कि प्रकृति के साथ हमारा रिश्ता नाजुक है। अगर हम उसे नजरअंदाज करेंगे, तो वह भी हमें नजरअंदाज कर देगी। लक्ष्मी की तरह, हमें अपने अतीत से सीखना होगा और अपने भविष्य को संवारना होगा। यह अध्याय उस सीख की कहानी है—एक ऐसी सीख जो हमें बताती है कि हमारा कल तभी हरा-भरा होगा, जब हम आज अपनी माँ प्रकृति की रक्षा करेंगे। यह एक नई शुरुआत का आह्वान है, ताकि कोई और खारी की चुप्पी न सुनी जाए, और कोई और जगपुरा खामोश न हो।

अध्याय 8: उपसंहार

खारी की चुप्पी अब सिर्फ एक नदी का सूखना नहीं थी; वह एक ऐसी गूँज बन चुकी थी, जो समय के पन्नों में हमेशा के लिए अंकित हो गई थी। यह चुप्पी कोई साधारण खामोशी नहीं थी; यह एक माँ की मौन पुकार थी, जिसके बच्चे उसकी गोद से छिन गए थे। खारी, जो कभी जगपुरा की धड़कन थी, जिसकी लहरों में गाँव की हँसी और सपने बहते थे, अब एक सूखा गड्ढा बनकर रह गई थी। उसके किनारे अब न बच्चों की किलकारियाँ गूँजती थीं, न महिलाओं के गीत, न ही रामदीन की कहानियाँ। वह माँ, जिसने पीढ़ियों को अपने आँचल में पाला, जिसने अपने पानी से खेतों को हरा किया और हर घर में जीवन भरा, अब अकेली थी—उसके बच्चे या तो उसे छोड़कर शहर चले गए थे, या उसकी सूखी गोद में भूख और बेबसी से दम तोड़ रहे थे। यह चुप्पी सिर्फ खारी की नहीं थी; यह हर उस नदी, हर उस गाँव, और हर उस समुदाय की चुप्पी थी, जो प्रकृति के क्रोध का शिकार बना।
जगपुरा की कहानी कोई अनोखी नहीं थी। यह हर उस गाँव की कहानी थी, जहाँ प्रकृति की उदारता को हल्के में लिया गया, जहाँ उसकी गोद को सिर्फ लिया गया और कुछ लौटाया नहीं गया। खारी की चुप्पी

एक दर्दनाक सत्य थी—एक ऐसा सत्य जो हमें बताता है कि प्रकृति की सहनशीलता की भी एक सीमा होती है। जब वह सीमा टूटती है, तो वह अपने बच्चों को भी नहीं बख्शती। 1987 का अकाल सिर्फ एक साल नहीं था; वह एक दर्पण था, जिसमें हमने देखा कि हमारी लापरवाही, हमारा लालच, और हमारी अनदेखी क्या परिणाम ला सकती है। यह कहानी हमें याद दिलाती है कि हर सूखी नदी के पीछे एक बिखरा हुआ गाँव होता है, हर खामोश खेत के पीछे भूख से बिलखते बच्चे होते हैं, और हर खंडहर में कभी हँसते-खेलते लोग बसते थे।
लोकोक्ति है, “जब तक साँस, तब तक आस।” यह कहावत उन लोगों की हिम्मत को बयान करती है, जो उस अंधेरे में भी टूटे नहीं। रामदीन, जो अपनी मिट्टी में मरना चाहता था, लक्ष्मी, जिसने अपने सपनों को फिर से जिया, और आरिफ, जिसने शहर में नई जिंदगी शुरू की—इन सबमें एक बात समान थी: उन्होंने हार नहीं मानी। उनकी साँसों में आस बाकी थी, और उस आस ने उन्हें आगे बढ़ने की ताकत दी। लेकिन यह कहावत एक सवाल भी छोड़ जाती है—क्या हमारी साँसें तब तक चलेंगी, जब तक हम प्रकृति की साँसों को बचाएँगे? क्या हमारी आस तब तक जिंदा रहेगी, जब तक हम खारी जैसी माँओं को सूखने से रोकेंगे? यह सवाल अब हमारे सामने है, और इसका जवाब हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए होगा।
संस्कृत का एक श्लोक इस भाव को और गहराई देता है:
“नादति चेत् न संनादति, तदा सर्वं संनादति।”
(अर्थ: यदि वह नाद नहीं करती, तो सब कुछ नाद करता है।)
खारी जब नाद करती थी—जब उसकी लहरें गाती थीं, जब उसका पानी जीवन का संगीत बनकर बहता था—तब गाँव में सुख था, शांति थी। लेकिन जब वह चुप हो गई, तो सब कुछ नाद करने लगा—भूख की चीखें, बेबसी की पुकार, और टूटते सपनों की कराह। यह श्लोक हमें बताता है कि प्रकृति का संनाद—उसका संगीत—हमारे जीवन का आधार है। अगर वह खामोश हो जाए, तो हमारी दुनिया भी एक दर्दनाक नाद से भर जाएगी। खारी की चुप्पी उस नाद का अंत थी, और उस अंत ने जगपुरा को हमेशा के लिए बदल दिया।
यह चुप्पी आज भी गूँजती है—हर उस नदी में, जो प्रदूषण से मर रही है, हर उस जंगल में, जो काट दिया जा रहा है, और हर उस खेत में, जो सूख रहा है। यह एक चेतावनी है, एक मर्मस्पर्शी पुकार है कि इसे अनसुना न करें। खारी की कहानी खत्म नहीं हुई है; वह हमारे सामने एक सवाल बनकर खड़ी है—हम क्या करेंगे? क्या हम अपनी नदियों को सूखने देंगे? क्या हम अपने गाँवों को खंडहर बनते देखेंगे? या फिर हम उस माँ की रक्षा करेंगे, जिसने हमें जीवन दिया? यह उपसंहार सिर्फ एक कहानी का अंत नहीं

है; यह एक नई शुरुआत का आह्वान है। यह हमें याद दिलाता है कि खारी की चुप्पी को फिर से संगीत में बदलना हमारे हाथ में है।

जब लक्ष्मी अपने छात्रों को खारी की कहानी सुनाती है, तो उसकी आँखें नम हो जाती हैं। वह कहती है, "यह सिर्फ मेरे गाँव की कहानी नहीं है; यह हम सबकी कहानी है।" उसकी आवाज में एक काँपन होता है, एक ऐसा दर्द जो सालों बाद भी ताजा है। रामदीन की जिद, हसन की भूखी आँखें, और गंगा की अनसुनी चीखें—ये सब उस चुप्पी का हिस्सा हैं। लेकिन लक्ष्मी की बात में एक उम्मीद भी है। वह मानती है कि अगर हम आज जाग जाएँ, अगर हम प्रकृति से संधि करें, तो कोई और खारी नहीं सूखेगी। यह उम्मीद सिर्फ उसके लिए नहीं, हम सबके लिए है।

खारी की चुप्पी एक माँ का मौन रोना है। यह हमें पुकार रही है—अपने बच्चों को वापस बुला रही है। यह हमसे कह रही है कि अभी देर नहीं हुई है। हमारी धरती, हमारी नदियाँ, और हमारा भविष्य अभी भी बचाया जा सकता है। पर इसके लिए हमें सुनना होगा—उस चुप्पी को, उस चेतावनी को, और उस पुकार को। यह उपसंहार एक अंत नहीं है; यह एक प्रार्थना है, एक संकल्प है कि हम उस माँ को फिर से हँसाएँगे, जिसके आँचल में हमारा जीवन बस्ता है। खारी की चुप्पी को अनसुना न करें—यह हमारी आत्मा की आवाज है, जो हमें जगा रही है।